

महाभारतकालीन समाज

महाभारतकालीन समाज

मूल लेखक
सुखमय भट्टाचार्य

अनुवादिका
पुष्पा जैन

प्रस्तावना
डॉ० मोतीचन्द

लोकभारती प्रकाशकालय

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकमार्ती प्रकाशन
१५ - ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद - १ द्वारा प्रकाशित



प्रथम संस्करण १९६६



© हिंदी अनुवाद १९६६
पुष्पा जन



सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

मूल्य २५ ००

लेखकीय भूमिका

गर्भ सप्त १८५९ में मैं विश्वभारती के सौजन्य म नियुक्त हुआ था। कवि-गुरु श्रीद्विनाथ के निर्देशानुसार महाभारत में वर्णित तत्कालीन सामाजिक आचार-व्यवहार पर सौजन्य दुरु किया। कुछ प्रबंध लिख जा चुके तो कवि-गुरु ने 'शिखा' नामक प्रबंध देखने की इच्छा प्रकट की। इस प्रबंध का पठकर उन्होंने उस पर दा मन्तव्य लिख, जो उस ग्रंथ के 'शिखा' प्रबंध की पालटोका में उद्धृत किया गया है।

श्रीद्विनाथ की मृत्यु के उपरान्त गर्भ सप्त १८६८ के वैशाख महीने में यह सब मकलिन ग्रंथ बंगला भाषा के ग्रंथ रूप में 'महाभारत समाज' के नाम से प्रकाशित हुए। यह ग्रंथ विश्वभारती सौजन्य प्रथमाला के अन्तर्गत आ जाता है।

गर्भ सप्त १८८१ के कार्तिक महीने में ग्रंथ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। बंगाली पाठक पाठिकाजा ने इस ग्रंथ को सादर ग्रहण करके मेरे श्रम का साधक बना लिया।

महाभारत भारतीय सभ्यता के प्राचीनकाल का इतिहास होने के साथ-साथ हिन्दुओं का धर्मग्रंथ भी है। स्वयं वेदव्यास ने इस पंचम वेद कहा है। विषयवस्तु की गुरुता एवं आकृति की विचालता में यह ग्रंथ ससार का अद्वितीय ग्रंथ है। इसकी उपमा ढूँढ़े नहीं मिलती। समुद्र के समान यह ग्रंथ स्वयं ही अपनी उपमा है। मनुष्य जीवन की ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिस पर महाभारत के दृष्टान्त या उपदेश लागू न हात हा। स्वयं ग्रंथकार ने इस ग्रंथ के सार में जो कुछ कहा है, उसी से इसका काफी परिचय मिल जाता है—

धर्मं धार्यं च कामे च मोक्षे च भरतपते ।

यदिहास्ति तदयत्र यत्रेहास्ति न कुवचित् ॥ आदि २।३९०

'जो महाभारत में नहीं है वह भारत में नहीं है' यह प्राचीन उक्ति व्यास-वचन की प्रतिध्वनि मात्र है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि महाभारत प्रधानतः इति-हास हीन हुए भी भारतवर्ष का श्रेष्ठ धर्मग्रंथ है। अध्यात्मशास्त्र के रूप में भी इसका तुलना का दूसरा ग्रंथ नहीं मिलता। उपनिषद् व द्वायान आदि के चरम तत्व की आलोचना महाभारत में ही सर्वविधा अथिक् हुई है। इसका अन्तर्गत वर्णित 'श्री-

मन्मगवगीता 'सन्तमुजानीय' 'माश्वम जादि अशा फा तुलना मा किमा हूमरे अयात्मगाम्न स नहा का जा सकता। महाभारत का जादर हर मम्प्रदाय न सिर झुवाङ्ग किया ह। यद्यपि कारव पाटना क युद्ध का लकर हा महाभारत का रचना हुई ह तथापि यद्ध का वषन इसका गीण उद्दश्य रहा है। एतिहासिक घटनाआ एव उपाट्याना क मायम न मानुष्य का हर जनस्था मे पयप्रदशन तथा सत्य का प्रचार हा महाभारत का प्रवान उद्दश्य है।

रवाद्रनाथ न कहा है— दंग म जा दिद्या जा चितनपारा द्वधर उवर निभित्त थी यहा तन कि कहा कहा लुप्तप्राय हा गर्थी उता सग्रह करके सहत करने की दल भावना जिमा समय पूर त्ग म जाग्रत हु र था। 'अपन जात्मा कप क युग व्यसपा एन्त्य का यदि अच्छे सरन् न समया जाय ता वह जनादत व अपरिचित रहन क कारण त्रमग जीण हाकर विलुप्त हा जाता है। जिमा का म इमा जागका ने दंगम म घतना का एक लहर ला दा थी जीर फिर अपने सूत्रछित रत्ना का पुन त्ग वर इक्ट ठा करके फिर स सूत्रबद्ध करन का एव उस हर काल के हर व्यक्ति क व्यवहार क लिए उत्सग करन की एव प्रबल इच्छा यान्त हा गद् थी। अपनी विराट चिमथा प्रवृत्ति को फिर स समाज म साभात प्रतिष्ठित करने क लिए दंग उत्मुक् हा उठा था। जा विषय कवल कुछ विगिष्ट पडिता के अधिकार म था उस अवड रूप मे जनमाधारण क समझ रखन का यह एक आश्चयजनक अध्व समाय था। इसके अन्दर एक प्रबल चष्टा जषलान साधना एव एक सम्पूण दष्टि थी। इस प्रयत्न का महिमा का शक्तिमयी प्रतिभा न अपना लद्य बनाया था इसका स्पष्ट प्रमाण महाभारत नाम म मिलता है। महाभारत क महत उज्ज्वल रूप का जितान अपनी कल्पना म दया था उन्हां न 'महाभारत' नामकरण किया था। वह रूप बाल्पनित्र हाने क साथ साथ भौमडलिव भी था। उहाने भारतवष की आत्मा का अपनी आत्मा के अदर दया था। उसी विश्वदष्टि के प्रबल जानद म उहाने भारतवष म चिरघाल तक स्थायी रहनवाली शिक्षा का प्रशस्त भूमि तैयार कर दी। क शिक्षा धम धम, राजनीति तत्वज्ञान जादि क रूप म बहुव्यापक रही। उसके बान से भारतवष ने अपन निष्ठुर इतिहास क हाथा जाघात पर आघात सह उमनी ममग्रथि, बार-बार विलिप्त हुई दय एव अपमान स वह जनर हा गया, किन्तु इतिहास विस्मत इस युग की उम कीति न ही जब तक लाक शिक्षा की जलसिचन प्रणाली का अनक धाराआ द्वारा पूण क सचल कर रला है। गाव गाव म घर घर म आज मा श्मका प्रभाव विद्यमान है। उस मूल उदगम स यदि शिक्षा की यह धारा निरन्तर प्रवाहित न हाता रहती ता दुस्र दारिद्र्य व असम्मान स यह दंग मनुष्यता का बधरना क अधरूप म विमजिन कर दता।

भारतवप म महाभारतीय विश्वविद्यालय क निम युग का उल्लास मैन विषया है, उम युग म तपस्या था, उसलिय उमका लक्ष्य मरना नही था उमका उद्देश्य था मवजनीन चित्त का उद्घापन उदवावन आर चरित्रनिर्माण' ।

उन्हनि अयम कथा है—“एसा प्रतीन हाना है माना गाा और हिमाय्य की तरहही रामायण और महाभारत भारतवप क अंग ही हैं । वाल्मीकि आर व्याम उपलक्ष्य मान हैं । भारत का धारा न इन दो मन्काव्या म अपनी क्या व संगीत का वचाय रक्ता है । रामायण और महाभारत भारतवप के चिरकालीन इतिहास हैं । एकान्तचित्त हाकर श्रद्धा महित विचार करना चाहिय कि हजारो वर्षों स सम्पूर्ण देग न इन ग्रया का किम रूप म ग्रहण किया है । मैं चाह किना भी वडा समालाचक क्या न हाजें किनु यदि सम्पूर्ण देग की इतिहास प्रवाहित सबका सोन विचारधारा के आग यदि मरा मन्क नत न हा ता वह आढत्य लज्जा का कारण ह । रामायण और महाभारत का भी मैं विणेपनया इनी प्रकार देवना हूँ । उनक सरल अनुष्टुप छंद म भारतवप का हृत्पिण्ड हजारो वर्षों म घडकता आया है ”।

कविगुरु की इस सथद्व समाक्षा के बाद महाभारत के मवच मे और कुछ कहन के लिए नही रह जाता । हम ता डम कालजया ग्रय के मौंदय पर मुग्ध व विम्भित हाकर कवच इसके रचयिता ऋषि कवि क चरणा म अपना प्रणाम निवदित करत हैं—

नम सर्वविदे तस्म व्यासाय कविते धसे ।

प्राच्य पंडिता का सिद्धान्त है कि भारव पाडवा का युद्ध इमा के जन्म म ३१०१ वष पूव हुआ था और परीत त्त के गरीर-भाग के बाद जनमेजय के मपमत्र म पहन महाभारत की रचना हुइ या । अथान इसा से ३०४१ वष पूव महर्षि कृष्ण द्वपायन न महाभारत की रचना गुरु की और तीन साल म यह रचना पूण हुई । पाञ्चाय पंडितों न महाभारत का २००० उप वाद का ग्रय माना है । इम मवच म प्राच्य पंडिता का अभिमत ठाम तत्र व प्रमाणों पर आधारित है । महाभारत म आय ज्योतिष-वचना की सहायता म भी उनके सिद्धान्त का प्रतिपादन होता है । षोड के इच्छुन पाठक पाठिकाया का भारताचार्य, महाभारतापाध्याय थापुत हरिदाम सिद्धान्तवापीण महागप क महाभारत की नूमिका म इन विषया पर बहुत मे तथ्य मित्र मक्ते हैं ।

उपान्याय क भाग का मिलातर महाभारत की श्लाकमय्या एक लान है और उस छाडकर चौबीस हजार । महाभारत का मणित वतात या सूची

मदभगवद्गीता 'सन्तमुजातीय 'भोगधम' आदि जशा की तुलना भी किमा दूसरे जयात्मगास्त्र स नहा का जा सक्ता। महाभारत का जादर हर सम्प्रदाय न सिर युवाकर किमा है। यद्यपि काग्व पाटवा व युद्ध का लकर हा महाभारत का रचना हुइ है तथापि यद्ध का वणन इमका गाण उद्श्य रहा है। एतिहासिक घटनाआ एव उपाययाना व मायम स मनुष्य का हर अवस्था म पथप्रदशन तथा सत्य का प्रचार हा महाभारत का प्रवान उद्श्य है।

रवाद्रनाथ ने कहा है— दग म जा विद्या, जा चितनधारा इधर उवर निक्षिप्त थी यत्न तत्र वि बहा-वहा लुप्तप्राय हा गइ थी उनका सग्रह करके सहत करने का दग भावना किमी ममय पूर दग म जाग्रत हुइ थी।⁴ अपन जा मात्वप व युग व्यापा एवय का यदि अच्छा तरह न समया जाय तो वह जनात व अपरिचित रहन व कारण नमग जीण हानर त्रिपुप्त हा जाता है। किमा काल म इसा जागका न दगभर म चतना का एक लहर ला दा था जोर फिर अपन मूनठिन रत्ना का पुन र वर श्वट ठा करके फिर स मूनवद्ध करन की एव उस हर काल व हर व्यक्ति व व्यवहार क लिए उत्तम करन की एक प्रबल इच्छा व्याप्त हा गइ थी। अपनी विराट चिभया प्रवृत्ति को फिर मे समाज म साक्षात प्रतिष्ठित करने क लिए दस उत्सुक हा उठा था। जा विषय केवल कुछ विगिष्ट पडिता के अविचार म था उसे अमड रूप म जनसाधारण व ममक्ष रगन का यह एक जाश्चयजनक अध्व वमाय था। इमक अदर एक प्रबल चेष्टा, अवलात माघना एव एक सम्पूण दष्टि थी। इस प्रयत्न की महिमा का गकिनमयी प्रतिभा न अपना लक्ष्य बनाया था, इसका स्पष्ट प्रमाण महाभारत नाम म मिलता है। महाभारत के महत उज्ज्वल रूप का जिहान अपना कल्पना म दग्ना था उहाने महाभारत नामकरण किया था। वह रूप काल्पनिक ज्ञान व माथ साथ मामालिक मी था। उहाने भारतवप की आत्मा का अपनी आत्मा व अदर दग्ना था। उसी त्रिशदष्टि के प्रबल आनंद म उहाने भारतवप म चिरकाल तक स्थाया रहनवाली गिशा की प्रगस्त मूमि तैयार कर दा। वह गिशा, धम, कम राजनीति, तत्वज्ञान आदि क रूप म बटुव्यापक रही। उसके बाद से भारतवप न अपन निष्ठुर इतिहास के हाया जाघात पर आघात सह उगवा ममप्रयि बार-बार विग्लिप्त हुई दय एव अपमान स वह जजर हा गया, किन्तु इतिहास विस्मृत इस युग की उम कीति न ही अव तक लाव गिशा की जलजिवा प्रणागी का अनक धाराआ द्वारा पूण व सचल कर रखा है। गांव-गाव मे घर घर म आज भा इमका प्रभाव विद्यमान है। उम मूल उत्तम स यदि शिक्षा की यह धारा निरन्तर प्रवाहित न हाना रहता, ता तुय दारिद्र्य व असम्मान स यह देग मनुष्यता का वरगता के अधकूप म विमजित कर देता।

अनुक्रमणिका अध्याय में (आदि १ला अध्याय) डेट सी श्लोका में वर्णित है।

इस विद्यालय प्रथम की रचना करके महर्षि व्यास न सवप्रथम अपने पुत्र शुक को यह पढाया, तदुपरान्त पैल, सुमत्त जमिनी और वशम्पायन — इन चार गिर्ष्या का इसकी शिक्षा दी। जादिपर्व के प्रथम अध्याय में इन विषया का विस्तृत वर्णन हुआ है।

महामारत का प्रथम प्रचार तक्षशिला में (पंजाब के रावलपिंडी जिला में जनमंजय के सपसत्र में हुआ। व्यासदेव भी उस यज्ञ में उपस्थित थे। महारत जनमंजय आर ब्राह्मणा के विशेष आग्रह पर महर्षि न अपने निकट बैठे अपन शिष्य वशम्पायन को महामारत सुनाने का आदेश दिया। गुरु के आदेश से मुनि वशम्पायन न उस यज्ञ में मारत क्या सुनाइ। वहाँ बहुत से मुनि ऋषि व गुणी ब्यर्षि उपस्थित थे। महामारत की दूसरी आवृत्ति नमिपारण्य में कुल्पति शौणका द्वादशवर्षी यज्ञ में हुई। वहाँ वक्ता थ लामहपण क पुत्र उग्रश्रवा और उपस्थित यानिक व दशकगण श्रोता थे। जत महामारतकालीन समाज का मतलब अतः से पाच हजार वर्ष पूर्व के समाज से हुआ।

महामारत में तीन स्तर देखने में आते हैं। रचनाकाल में बहुत पहले घटनाओं व उपाख्यान जादि की भी इसमें स्थान मिला है—रामायण का वर्णन लोपाख्यान सावित्री की कहानी आदि। प्रायः प्रत्येक पर्व में पुरातन इतिहास का बहुत सी कथाएँ लिपिबद्ध हुई हैं विनेपत गाति और अनुशासन पर्व के मीमांसा युधिष्ठिर सवाद में प्राचान इतिहास व अनगिनत उदाहरण मिलते हैं। उन वर्णना का प्राकमहामारतीय स्तर रूप में लिया जा सकता है। महामारत में वर्णित पात्र पात्रिया के चरित्र एव तात्कालिक दूसरे इतिवत्त को महामारतीय स्तर रूप में लिया जा सकता है। महामारत की रचना के बाद अर्थात् कलियुग के आचार्य व्यवहारो का भी थाडा सा वर्णन माण्ड्येय सभास्या (वनपर्व) आदि में मिलता है इन प्रकरणा का परममहामारतीय स्तर रूप में लिया जा सकता है। अतएव समझा जा चाहिए कि प्राकमहामारतीय समाज पाँच हजार वर्षों से भी प्राचीन है अतएव परममहामारतीय समाज महामारत के रचनाकाल से दो चार सौ वर्ष बाद का अर्थात् आज से साठ चार हजार वर्ष पूर्व के प्रायः एक हजार वर्षों का भारतीय इतिहास महामारत में वर्णित हुआ है।

जिसा किमी प्राच्य व पश्चात्य पंडित ने महामारत के बहुत से अंगों को प्रक्षिप्त कहा है। यहाँ तक कि उन्होंने तो श्रीमद्भगवद्गीता को भी प्रक्षिप्त कहन से नहीं छोडा। जिसा कि सी न तो प्रक्षिप्त अंग समझने का नया ढंग भी निक

लिया है। जिस प्रकार यह कहा ठीक नहीं है कि हममें कोई भी अश प्रक्षिप्त नहीं है उसी प्रकार यह कहना भी युक्तियुक्त नहीं है कि स्वार्थाद्य व्यक्तियाँ ने इसमें जहाँ-तहाँ अपने श्लोक जाड़ दिये हैं। मूद्रण प्रणाली के प्रचलन से पहले अनेक कारणों से मूल पाठ में परिवर्तन और परिवर्द्धन का हाना कोई विचित्र बात नहीं है। दणभेद लिपिभेद, कौडा द्वारा पाठ स्थान पर अनुमानिक संयोजन, कथक व पाठक द्वारा रचित काष्ठपात्र एवं उनकी लिखी विचदतियाँ वगैरे उनका मृत्यु के उपरान्त दूमरे लक्षका द्वारा मूल में जाड़ा जाना आदि कारण अवश्य थे अथवा पाठभेद, अध्याय व श्लोका की सत्या में असामंजस्य नहीं रहता, किन्तु तब भी महाभारत उस बहद ग्रंथ का प्रक्षिप्त अश निर्धारित करना आसान काम नहीं है। विरोधी वचना के समाधान का चेष्टा त्रिय बिना ही उस प्रक्षिप्त बहकर टाल देना भी एक प्रकार का दुःसाहस ही है। अपनी रचि के विपरीत अश का प्रक्षिप्त बहकर अपना मिद्वान्त स्थापित करना एतत्ता आसान है, परन्तु शास्त्र-समाधा की भारतीय पद्धति यह नहीं है। भारतीय पद्धति पद-वाक्य व प्रमाण शास्त्र (व्याकरण पूर्वमीमांसा और याग) की सहायता से शास्त्रा व पुणतया जनविरोधी अशा के समाधान का भी चेष्टा करते हैं और अपनी इन चेष्टा में बिल्कुल ही असफल होने पर हारकर उस विरोधी अश का प्रक्षिप्त कहते हैं। पूना के महारत्न आर्य्यटल रिस्च इन्स्टिट्यूट द्वारा प्रकाशित महाभारत के प्रकाशन-काल में मैंने भी दीघकाल तक वाप किया था। उस समय मुझे भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों की हस्तलिखित महाभारत की अनेक पाण्डुलिपियाँ पठन का अवसर मिला था। विभिन्न प्रदेशों का उन पाण्डुलिपियाँ में मुझे ता वहाँ भी आकाश-माताल का अन्तर नहीं दिखाई दिया। दाघकाल का व्यवधान हान व कारण ग्रंथ में काफी परिवर्तन परिवर्द्धन हुआ है यह तत्सत्य है, किन्तु अब बद्रव्याप्त रचित यथाय अश निकालना शायद बिल्कुल ही असंभव है। और अपनी अभ्यमना व कारण ही मैंने यह दुःसाहस नहीं किया।

मनुष्य के सघ का समाज कहते हैं। महाभारत में मनुष्य का बहुत उँचा स्थान दिया गया है। 'हमगोता' (शान्ति २९९वाँ अध्याय) में उद्धृत है—

“गुह्यं ब्रह्मा तदिदं यो ब्रवीमि”
न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्”

अर्थात्—मैं एक गुह्य महत् तत्त्व बतलाता हूँ कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।

‘महाभारतकार ने मनुष्य का मनुष्य के रूप में ही दर्शा है, उसे देवत्व में उन्नत

नहा किया। स्वाभाविक व अस्वाभाविक वाता के विचित्र समावेश से महाभारत भरपूर है। दयता और मनुष्य का मित्रता ऋषिया की तपस्या तथा उनका सामयिक स्पन्दन, वर और शाप का दना स्त्रा पुत्र्य का नि सकाच मिलन अस्वाभाविक जन्म-वृत्तात जादि अनेक प्रकार का घटनाआ का वणन हाने के कारण महाभारत मानो मयत्रक का ग्रथ हाते हुए भी त्रिलाकवासिया का पाठ्यग्रथ बन गया है। इमके पात्र पात्रिया का जीवित चरित्र चित्रण जितना विचित्र है, मामाजिक आचार-व्यवहार भी उतना ही विचित्र है किन्तु उस काल के बहुत से आचार आज भी भारताय हिंदू समाज म ज्या के त्या विद्यमान हैं यह देखकर बहुत ही आश्चर्य होता है। प्राचीनकाल से चल जा रह इन आचरणा क माध्यम से हम इस काल क मनुष्य के बार म भलाभाति समथ सक्ते है। महाकाल के निर्विकार साक्षा की तरह निरासक्त होकर महर्षि ने अपनी इस अपूर्व रस-समद्ध महिता की रचना की है। श्री कृष्ण का साक्षात् भगवान बताते हुए भी बाच-बीच म उनके चरित्र म मानवीयता दिखाई गई है। एक महामति विदुर के जलावा हर एक क चरित्र म तो चार दुखलताएँ अवश्य प्रस्फुटित हुई हैं। भीष्म द्राण, गांधारी, युधिष्ठिर काई नहा छूटा। सरल भाषा जपन जन्म का वणन करने म भी सत्यनिष्ठ ग्रथकार का षठ कपित नहा हुआ यद्यपि उस युग म भी कानीन पुत्र का समाज म काई बहुत अच्छा स्थान नहा था। महर्षि व्यास की यह अपूर्व सत्यनिष्ठा महाभारत म पद पद पर दिखाई देती है।

स्वोद्घनाय के आदेश का गिरावाय करके मैं महाभारतकालीन समाज का चित्र बन करन की चेष्टा का है। मनुष्य का वास्तविक परिचय समाज द्वारा ही हाता है। पाण्डावा म उद्धत प्रमाण तक मवत १८२६ म कल्कत्ता के बगवासी प्रेस से प्रकाशित पंडित प्रवर पचानन तकरल्ल द्वारा सम्पादित महाभारत से लिय है।

महाभारत म अठारह पव है यथा—जादि समा बन विराट, उद्याय भाष्म, द्राण वण गल्य सीप्तिक स्त्री गाति अनुगासन अश्रमव आश्रमवासिक मीपल, महाप्रत्यातिक और स्वगारोहण। हरिवग जादि ग्रथ महाभारत क परि गिष्ट माने जाने हैं महाभारत म हरिवग का परिगिष्ट रूप म लिया गया है। हरिवग के तीन पव हैं—हरिवग विष्णु और भविष्य । अपनी पुस्तक म मन हरि वग से भी प्रमाण लिय हैं। पाण्डोवा म प्रमाण उद्धत करते हुए पव के नाम का प्रथम अक्षर या प्रथम दो अक्षर लिय गय हैं। जन्म—विराट पव का साकतिक 'वि, आनि पव का आनि इयाति। जिम विषय म एकाधिक बहुत सी उक्तियाँ महाभारत म मिलनी हैं वहाँ वक्तव्य क समयन म दो एक उक्तियाँ सम्पूर्ण लेकर बाकी क पव जध्याय क श्लोक-मरु । एक साथ द दा है।

प्रायः तीन वर्ष पूर्व श्रीयुक्त पद्मकुमार जैन का एक प्रस्ताव आया था, जिसमें उन्होंने 'महामारतर समाज' का अपनी पत्नी श्रीमती पुष्पा जैन से अनुवाद कराकर प्रकाशित कराने का अनुमति मागी थी। मैंने यह प्रस्ताव सातसाह स्वाकार कर लिया था।

इस ग्रन्थ के अनुवाद में श्रीमती पुष्पा जैन ने यथोचित सतकता बरती है। बंगला में दूसरे संस्करण में थोड़ा-बहुत परिवर्तन व परिवर्धन हुआ था, उसी संस्करण का हिन्दी अनुवाद किया गया है।

अधिक से अधिक पाठकों इस ग्रन्थ का पढ़ने इमी से मेरा, जिन महाशयों का और उनकी पत्नी का धर्म साधक होगा। इति।

२५ बंगाल
शक संवत् १८८१

—श्री सुखमय भट्टाचार्य
विश्वभारती विश्वविद्यालय
शांति निवेदन, पश्चिम बंगाल

मानवता का ही सबके ऊपर रखने के कारण महाभारत में उन सत्र बातों का उल्लेख हुआ है जिनसे मानव जावन का निकटतर सबध है, यह जीवन एकागी न हाकर बहुमुखी है जिसके अंतगत विवाह पद्धति नारी-जीवन और नारी का स्थान, सस्कार, चातुर्वर्ण्य, चतुराश्रम शिक्षा कृषि और पशुपालन शिल्प वपमूपा तथा श्रृंगार-पटार पारिवारिक व्यवहार, यापार, अतिथिसेवा धर्म उपासना, राजधर्म, दशन इत्यादि सभी बात आ जाती हैं। इन सब विषयों पर पंडित सुप्रमय मट्टा चाय न अपनी पुस्तक में विस्तारपूर्वक विचार किया है तथा महाभारत से ही उद्धरण देकर उन विषयों की पुष्टि की है। उनकी शली इतनी राचक है कि जिस विषय को वे हाथ में लेते हैं उसका सजीव चित्र सामने खडा हो जाता है। पर ऐतिहास दृष्टिबान से महाभारत का अध्ययन करनेवाला के सामने यह प्रश्न बराबर बना ही रहता है कि शास्त्रीजी ने महाभारत के आधार पर भारताय जीवन, राजधर्म और तत्त्वज्ञान का जा पहलू हमारे सामने उपस्थित किए हैं क्या वे एक ही युग के हैं अथवा भिन्न भिन्न युगों का परंपरा का क डया जाटकर समाज और धर्म के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें सदेह नहीं कि महाभारत में अनेक स्तर हैं और इन स्तरों के कारण विचारों में तथा सामाजिक और राजनीतिक विचारधाराओं में असंगतियाँ भी दोख पडती हैं। इन स्तरों का निराकरण कैसे किया जाय और फिर उह एक त्रित करके युग विशेष में भारताय ससृष्टि का चित्र कम खींचा जाय यह प्रश्न हमारे सामने बराबर बना रहेगा। श्री मट्टाचाय का प्रयत्न इस दृष्टि से स्तुत्य है कि उन्होंने प्रमनुन सामग्री के आधार पर महाभारत का विश्लेषण करके प्राचान भारत का एक सागापाग चित्र उपस्थित किया है। और इस तरह श्री हापकिंस के काम का आगे बढ़ाया है।

पर महाभारतवालीन समाज का चित्र खींचने के पहल यह आवश्यकता अत्रिक जान पडती है कि जिस समाज का शास्त्रीजी ने चित्र खींचा है उसके भौगोलिक आधार क्या थे उस समाज का वहतर भारत तथा निकटपूर्व न दशा से क्या सबध था तथा भारत की महाजाति क संगठन में समय-समय पर मध्य एशिया और ईरानी नस्ल के बनीला न क्या योगदान दिया इस सबध में लग जान। मनापव में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ प्रकरण तथा पाडवा क दिग्मिजय यात्रा के प्रकरणों से हम उम भारतीय ससृष्टि का जा चित्र मिलता है जिसका विस्तार भारत की भौगोलिक सीमा तक ही स्थिर न हाकर वक्षु और परिवन् प्रणेत तथा द्वीपातरा तक फला हुआ था तथा यहाँ के व्यापारी स्थल माग से एशिया माइनर में अतारवी तक जात थे तथा समुद्री व्यापारी लाल मागर हाकर स्थल माग से मबनपुरी यानी निकदगिया तक पहुँचते थे। इनका ही नहीं युधिष्ठिर का भेंट देने वाला में कवल इस देश के

लोग ही नहीं थे। उनमें शक, पल्लव, दशरथ, कक, हण इत्यादि अनेक मध्य एशिया के लोग भी थे जो न केवल समय-समय पर हम देश में आकर बस भी जाते थे वे अपने देश से भारत में साथ बराबर व्यापारिक और सांस्कृतिक संचय कायम करने के लिए प्रयत्नशील भी रहते थे। स्मृतिकार इन विदेशियों के उन आचार-विचारों में जिनका भारतीय आदर्शों में मेल नहीं खाता था अमनुष्यता हाकर उनकी भासना करते थे। महाभारत में भी इनकी कोई विशेष प्रशंसा नहीं की गई है पर ऐतिहासिक और पुरातात्विक दृष्टि से इस बात में सन्देह नहीं कि भारतीय हिन्दू समाज ने जो रुढ़िगत माना जा रहा था इन आगन्तुकों से एक नई मन्वृति और एक नया दृष्टिकोण पाया जिसका स्पष्ट छाप हम भारतीय जीवन और कला के अनेक अंगों पर स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

समय मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि महाभारत सबका अनेक विवादग्रस्त प्रश्नों का वादजूद प० सुखमय भट्टाचार्य ने महाभारतकालीन समाज का जो चित्र हमारे सामने रखा है वह विद्वत्तापूर्ण है। इसमें महाभारत मन्वृति अध्ययन का प्रारम्भ मिलना एसा आशा की जा सकती है।

इस ग्रन्थ की अनुवादक श्रीमती पुष्पा जल के सबब में भी कुछ कठना अनुचित न होगा। उन्होंने एसी सरल और सुवाच्य शैली में इस बर्णन पुस्तक का अनुवाद किया है कि इसके पढ़ने वाले का मनःप्रयत्न की भाषा का आनन्द आ जाता है।

प्रिय आर्य बन्स म्यूजियम
बम्बई।

—(३१०) मातीचन्द
३१५-१९६६

अनुवादिका के दो शब्द

हिंदी पाठको के ममय श्री सुखमय मट्टाबाय के बगला ग्रंथ 'महाभारतेर ममाज' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए मय अत्यन्त ह्य हो रहा है। अपनी प्रथम पुस्तक '१२ बगला श्रेष्ठ कहानियाँ' के प्रकाशन के बाद मैं इस उलझन म थी कि अब कौन सी पुस्तक हाय म लू। उपमास, कहानी थी आर काइ विशेष बूबाव न था थीर कोई ठोस काय करना चाहती थी। मेर पतिदेव ने पंडितजी को इस पुस्तक के अनुवाद का आग्रह करने हुए कहा कि इस अनुवाद के प्रकाशन से हिन्दी माया की एक बनी बनी पूरी हा जायगी।

मुझे सदह था कि मैं लेखक व पाठका के साथ याय कर पाऊँगी या नहीं। इस उलझन से छुटकारा दिलाया हिन्दी जगत के देदीप्यमान तरुण लेखक स्वर्गीय डा० रागय राघव न, जो अपन जीवन के अतिम काल म अपन असाध्य राग का उपचार कराने बम्बई आये थे और कुछ काल के लिए हमारे साथ ठहरे थे। यह अनुवाद उही की पुण्य स्मृति को समर्पित है। उनकी दो हुई प्रेरणा आज भी निरंतर व अबाध काय के लिए प्रेरित करती रहती है।

किती माया को किसी पुस्तक का अनुवाद के लिए हाथ म लेने पर अनुवादक का कतब्य हा जाना है कि वह लेखक और पाठक के साथ पूरा याय करे। मैं इस अनुवाद म पूरा प्रयत्न किया है कि लेखक का यह महसूस न हो कि जा कुछ वह कहना चाहते थे, उसे मैं अच्छी तरह व्यक्त नहीं कर पाइ और पाठक नहीं इससे ऊब कर इसे नाक पर उठाकर न रख दें। अनुवाद म बहुत से शब्द ऐसे हैं जा पाठका का कुछ अप्रचलित व नये लगेंग, लेकिन मुने बाध्य होकर वे शब्द उसी प्रकार रखन पड़े है, जस कि मूल पुस्तक म थ। उन शब्दा व माल पर्यायवाची शब्द ढूँढने का मैंने बहुत कोशिश की परन्तु समानार्थक शब्द न मिलन पर मैंने उह ज्या का त्या रखनी उचित समझा। एक थीज पाठको के सफल और आशगा वह है पुनरावृत्ति। लेकिन जानत हुए भी मुझे म पुनरावृत्तियाँ ज्या थी त्या रखनी पडी हैं। पुस्तक के विषय का देखते हुए और अनुवादक हान के नात मुझे यह बधि-कार नहीं था कि मैं अपना आर स कुछ पटा या बड़ा सकू।

महाभारत के उदगम, विकास, काल और भाषा ससंबंधित साहित्य अग्रजी तथा अथ यूरोपीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में प्राप्य है, परन्तु हिन्दी में इस प्रकार की कोई भी पुस्तक देखने में नहीं आई जिसमें महाभारतकाल के आचार-व्यवहार, अथ-काम आदि जीवन के समस्त पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया हो। प्राच्य विद्या विशेषज्ञ सौरेसन, बाथ, सिल्वलबी पिश्चल जखोवी बाप, औल्डन बग, हीपकिन्स, लास्मन बन्सर, लुडविग तथा विटररिट्स आदि अधिकारियों ने महाभारत के अलग-अलग अंगों का तो विवेचन किया है और विवाद में खड़े किये हैं, परन्तु जहाँ तक इस अल्पविज्ञ अनुवादिका की सूचना है, किसी एक ही पुस्तक में इतने विस्तार से महाभारत ग्रंथ पर ही आधारित तत्कालीन समाज का चित्रण किसी ने भी नहीं किया है जितना १० सुवर्णमय भट्टाचार्य जी ने। मराठी में 'महान लेखक और विद्वान चितामणि वर्य की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद महाभारत भीमासा' के नाम से ३० वर्ष से भी अधिक हुए प्रकाशित हुआ था, जो अब अप्राप्य है। गीता प्रस की ओर से महाभारत का नामानुक्रमणिका प्रकाशित हुई है और सौरेसन का मूल्यवान ग्रंथ भी 'महाभारत की नामानुक्रमणिका' के नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ है। पर हिन्दी में अब तक इस विषय की कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। आशा है कि हिन्दी-जगत इसका स्वागत करेगा।

अतः मैं पंडित जी का आभार प्रदर्शित करती हूँ कि उन्होंने इस ग्रंथ के अनुवाद का अनुमति दी और पुस्तक के अनुवाद में अपना पूरा सहयोग दिया। उन सत्र विद्वानों के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने अपनी मूल्यवान सम्मतिपूर्ण देकर अनुवाद में सहायता की और कठिनाई पढ़ने पर उस दूर करके निरंतर आगे बढ़ने के लिये उत्साहित किया। डा० मोतीचंद तथा डा० हाररीप्रसाद द्विवेदी जी का तो मैं जिनका भी आभार प्रकट करूँ थाडा है। मेरे इस प्रयास का सफलता का श्रेय तो वास्तव में आप लोगों का ही है। पुस्तक का विश्लेषण इतना अच्छी तरह से करके आपने पाठकों के लिये सहज भाग बना दिया है। मैं तो हृदय से आभारी हूँ कि आप लगातार मेरा उत्साह बढ़ाने हुए भविष्य में जागे काय करते रहने की प्रेरणा दी। लोकभारती प्रकाशन संस्था और साहित्य सम्मेलन प्रस की धन्यवाद है कि उन्होंने पुस्तक के मुद्रण में विशेष रुचि दिखाई व सतकता बरती।

अनुक्रम

✓ विवाह (क)	३
✓ विवाह (ख)	२८
गर्भाधानादि-सस्कार	५५
नारी	६२
चातुर्वर्ष्य	८५
✓ चतुराश्रम	१०१
शिक्षा	११६
जीविका-व्यवस्था	१४७
कृषि, पशुपालन व गासवा	१६१
वाणिज्य	१७०
शिल्प	१७५
आहार व खाद्य	१९५
परिच्छा और प्रसादन	२०९
सदाचार	२१७
✓ प्रारिवाहिक व्यवहार	२२०
प्रकीर्ण व्यवहार	२३५
अतिथि-सेवा और शरणागत रत्ना	२५२
क्षमा व श्रद्धा	२५६
अहंकार व कृतघ्नता	२६३
'दान प्रकरण	२६६
धर्म	२७१
सत्य	२८६
देवता	२९३
उपासना	३१७

आह्निक व कृत्य	३२०
✓ प्रायश्चित्त	३३३
शवदाह व अशौच	३३८
श्राद्ध व तपण	३४२
✓ दाय विभाग	३५८
राजघम (क)	३६२
राजघम (स)	३८६
राजघम (ग)	४२९
साधारण नीति	४६७
युद्ध	४७०

● तृतीय खंड

आपुर्वेद	५०१
पशु व वृक्ष आदि की चिकित्सा	५१३
गाथव	५१६
व्याकरण व निरुक्ति	५२०
ज्योतिष	५२२
वेद और पुराण	५३४
✓ दार्शनिक मतवाद	५३८
आन्विकिकी	५६५
सांख्य और योग	५७६
पूर्वोत्तर मीमांसा	६०३
गीता	६१७
पंच रात्र	६३०
अवेदिक मत	६३५

प्रथम खण्ड

विवाह (क)

भारतीय साम्राज्य ठाके म विवाह का म्यान नवप्रथम ह। इम कारण विवाह' स ही हमारी बालाचना आरम होती है।

सुदूर प्राचीन काल मे स्त्री-शुश्य का स्वराचार—मनाज म विवाह प्रथा अनादिनाल से चली आ रहा हा ऐसी बात नहा, नग्नारा का यथच्छ मिलन ही प्राचीन प्रथा थी। नारी का बहूत से पुरुषा के प्रति एव पुरुष का बहूत सी नारिया क प्रति जाहृष्ट होना सामाजिक रूप म तय नग माना जाता था। बन्कि इन प्रकार के स्वराचार का हा उन युग म धम क रूप म ग्रहण किया जाता था। युजि म भा दखा जाता है कि बामदेव्य व्रत म समागमायिनी नारा की अनावाचना पृथ कग्ना धमहृत्या म गिना जाता था।

स्वराचार ही प्राकृतिक है—गु-यती भा चिकाल स इना प्रकार क व्यवहार के जन्मल है। उनम वह प्राचीन प्रथा वैमा ही चला आ रहा है उसन बाद परि-यतन नहा हुआ है।

महाभारत क समय भी उत्तर कुश मे यही आचार था—उत्तर कुश म यह प्रथा बापी त्तिन लन वनमान रही। पाडु की लचित म पना गता ह नि उनके गजबकाल म भी उत्तरकुश म विवाह प्रथा प्रचलित नहा हुई थी। इस प्रकार के आचरण का स्त्रिया क प्रति विरोध अनुग्रह बताया गया है।^१

इतकतु द्वारा विवाह मर्यादा की स्थापना—कालान्तर म समाज म विवाह-प्रथा गुरू हुई। उद्गात्र नामक ऋषि के पुत्र इतकतु न सबप्रथम विवाह प्रथा का नियम बनाया। कहा गया है कि एव बार इतकतु अपने माता पिता क पास बडे थ। उगा समय एव ब्राह्मण बहा आया और उनत्री मा का हाथ पकडकर

१ अनावता किल पुरा त्रिय आसन धरानने । इत्यादि । आदि १२२।४-८ द्रष्टव्य नीलकंठ ।

अनावता स्त्रिय सख्या नरादच धरवणिनी ।

स्यभाव एष सानाना विशारोन्व इति स्मृत ॥ वन ३०६।१५

उत्तरेषु च रम्भोद कुक्ष्वद्यापि पूज्यते ।

श्रीणामनुग्रहकर स हि धम्म सनातन ॥ आदि १२२।७

बाला, 'बला, हम लाग चलें।' श्वेतकेतु का उस अनातकुलशील ब्राह्मण की म अशिष्टता पर अत्यन्त क्रुद्ध होने देख उदात्त बाले, वत्स, क्रुद्ध मत होओ, स्त्रियाँ भी गाय की तरह आवरणहीन एव स्वराचारिणा हाता हैं।

ऋषिपुत्र पिता के वाक्या से शान्त नहीं हुए। व और भी क्रुद्ध होकर बोले, "मैं यह नियम बनाता हूँ कि अत्र से मनुष्य समाज में स्त्रियाँ-पुरुष दाना में से कोई भी यौन व्यापार में म्वच्छदाचरण को प्रश्रय नहीं दे सकेगा। मेरा नियम उल्लंघन करने वाले का भ्रूणहत्या का पाप लगाया। लेकिन जो नारी पुत्रोत्पादन के निमित्त पति का आदेश मिलने पर भी दूसरे पुरुष के साथ सम्भोग न करके जादेश का उल्लंघन करेगी, उसी पाप का भागिनी हागी।^१

दोषतमाकृतक नारियों के लिये एकपतित्व विधान—दोषतमा नामक एक ऋषि जन्माश्रय थे। उन्होंने प्रद्वेषा नाम की किसी सुदरा ब्राह्मण कन्या से पाणिग्रहण किया था। कामधनु के पुत्र से कामधम का अध्ययन करके व उसी तरह के (प्रकट मयुन) आचरण में प्रवृत्त हुए। उनके इस अशिष्ट आचरण से क्रुद्ध होकर आश्रम के मुनियों ने हर तरह से उनका साथ छोड़ दिया। प्रद्वेषा को भी उन पर पहरा जितनी श्रद्धा नहीं रही। अथ दुर्विनीत पति उन पर हा आश्रित थे। एक दिन उन्होंने पति से कहा मैं अब तुम्हारा भरण-मापण नहीं कर सकूंगी। पत्नी के बहोर वचना में क्रुद्ध होकर दोषतमा वाले मैंने अत्र से यह नियम बना दिया कि कोई भी स्त्रियाँ कभी भी एक से ज्यादा पति नहीं रख सकेंगी। पति के जीवित रहते या मरने के बाद जो नारी दूसरे पुरुष को ग्रहण करेगी, वह समाज द्वारा निर्दिष्ट होगी। पतिहाना नारियाँ किसी भी एश्वय का उपभाग नहीं कर पायेंगी।^२

दोषतमा के अनुशासन का व्यतिश्रम—दोषतमा कृत नियम महाभारत की सनसामयिन समाज व्यवस्था में कोई बहुत आश्रित नहीं हुए। इस विषय पर आगे आलोचना हागी।

ऋतुकाल छोड़कर स्वच्छन्द विहार—ऋतुकाल के दिना का छोड़कर नारियाँ इच्छानुकूल विहार कर सकती थीं, केवल ऋतुकाल में पति के अलावा दूसरे पुरुष का सम्भोग नहीं करती थीं, यह नियम भी कभी समाज में प्रचलित था।^३

१ मयदियम कृता तेन धर्म्या व श्वेतकेतुना। इत्यादि। आदि १२२।१०-२०

२ जायस्यो वेदवित् प्राज्ञ पत्न्या लेभे स विद्यया। इत्यादि। आदि १०४।२३-२७

३ (क) ऋतायनो राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते। इत्यादि। आदि १२२।२५, २६

✓ विवाह सस्कार और उसकी पवित्रता—विवाह स्त्री व पुरुष का एक विशेष सस्कार है। यह बहुत ही पवित्र वधन है। महाभाग क 'आश्रम धर्म' एवं 'पतिव्रताधर्म' की आलोचना में इस विषय पर विम्बन रूप से प्रकाश डाला जायगा। गृहस्थ धर्म की समस्त सुख शान्ति व कर्तव्यनिष्ठा इसी पवित्र वधन पर आधारित है।

विवाह का प्रधान उद्देश्य पुत्रोत्पत्ति—विवाह का प्रधान उद्देश्य पितृकृण का परिशोध करना है। सन्तानोत्पत्ति द्वारा वह ऋण उतरता है। पितरा का अविच्छिन्न सत्तिधारा का रक्षा करन से ही वे प्रसन्न होते हैं। (चतुराश्रम प्रकरण देखिए)।

गृहस्थ के लिये विवाह एक आवश्यक कर्तव्य—ब्रह्मचर्य पालन के बाद जो गृहस्थ होना चाहता है पत्नी ग्रहण करना उसके लिय अनिवार्य है। जरतार के साथ उनके पितृगण का जो क्यापकथन वर्णित है, उसमें स्पष्ट उल्लिखित है कि गृहस्थ के लिये स्त्री ग्रहण एक आवश्यक कर्तव्य है नहीं तो पितृगण नरक गामी होते हैं।^१

पुत्रलाभ की श्लाघता—जगत में जितने भी पार्थिव गम हैं उन सबमें पुत्रगम ही सभसे अधिक श्लाघनीय है। धर्मपत्नी द्वारा पुत्रोत्पत्ति हान में वग की अविच्छिन्न सत्ति धारा रक्षित होती है।^२

एकमात्र पुत्र के विवाह की अपरिहायता—जो व्यक्ति अपने पिता का एक मात्र पुत्र हो, उसके लिये नष्टि ब्रह्मचर्य निषिद्ध है। पुत्रोत्पत्ति व निमित्त उसे पत्नीग्रहण करनी ही होगी। जरतारान्त्यितमवाद में यह बात बारबार कहा गया है।^३

द्वारपर्युग से स्त्री पुरुष के संयोग से सन्तानोत्पत्ति—कहा गया है कि सत्पर्युग में मनुष्य की मृत्यु स्वच्छाधान थी। यम का भय त्रिकुल नष्ट था। उस काल में

१ आदि १३ वां अ०।

रतिपुत्रफला नारी। सभा ५।११२, उ० ३८।६७

उत्पाद्य पुत्राननशाच कृत्वा। उ० ३७ ३९

२ विवाहाश्च कुर्वीत पुत्रानुत्पादयेत् च।

पुत्रलाभो हि कीर्य्य सबलाभात् विणिष्यते ॥ अनु ६८।३४

कुलप्रप्रतिष्ठां हि पितर पुत्रमश्रूयन्। आदि ७४।९८

यथा जन्म ह्यपुत्रस्य। वन १९९।४

३ आदि १३ वां अ०। आदि ४५ वां और ४६ वां अ०।

सकल्प करत हा सतान की उत्पत्ति हा जाना थी। प्रेतायुग म भी मयुनयम का प्रचलन नहीं हुआ था, नारी के स्वगमान से ही सतान की उत्पत्ति हा जाता थी। द्वापरयुग मे आकर स्त्री पुरुष का मयाग पहल पहल गुरु हुआ। (ये सत्र उवािया युविनयुवत है नि नही, यह विद्वाना क लिये विवचनीय है)। पुत्रोत्पत्ति क निमित्त स्त्रीग्रहण क प्रचलन का भी तभी मे समाज म म्यान मिला।

मभवत यहुन प्राचीनकाल म विवाह प्रथा समाज म व्यापन रूप से प्रचलित नहीं हु" इस कारण ही भिन्न भिन्न युग म "यवहारवपम्य का उल्लेख है।

साधारण स्त्री पुरुषा के लिये विवाह न करना कोई अच्छा जानश नहीं था— मी म से नियानत्रे स्त्री-पुरुष उस काल म विवाहग्रधन मे जाबद्ध हात थे। जा स्त्री पुरुष नष्टिन ब्रह्मचय व्रत लेत थे, उनका बात अलग थी उनके प्रति साधारण मनुष्या की जगात्र श्रद्धा थी। उगाहरण के लिय दवत्रत भीष्म य तपस्विनी सुलभा का नाम लिया जा सक्ता है।

परस्त्री मे आसक्ति जतिगय निमित्त—परन्तु जा विवाह वा दायित्व ग्रहण न करवे स्वच्छद रूप मे विचरण करत थे व समाज म जतिगय घणा क पात्र समने जान थे। परस्त्री म आसक्ति इहगान व परगोन दाना क लिय जकरयाण वारी है। दसगिण जो गहम्याश्रम म प्रगन करत थे, उह विवाह करना ही पडता था। विवाह का बधन वदुन ही पवित्र समना जाता था। भार्या का सहधमिणा कहा जाना था।

भाया ही त्रिवग का मूल— भाया ही मनुष्य क त्रिवग जर्थात धम जय काम प्राप्ति का प्रवान साधन है —जाति जमव्य वाक्य विवाह के समयन म कह गय ह। धमचाग्िणी भाया के गाय मिलकर ससारयात्रा वा विवाह करन से धम, अथ काम (त्रिवग) तीना एक साथ प्राप्त हाते है। गहस्वधम म त्रिवग के बीच परस्पर काड विरोध नहीं ह। एगमात्र पतिव्रता भार्या की सहायता से पुरुष धम, अथ व काम रूप त्रिवग का एक साथ उपभाग कर सक्ता है।

१ यानद यानदभूचुड्ढा देह धारयितुम न्णाम ।

तात्रत्तात्रदजीवस्ते नासीद यमकृत भयम ॥ इत्यादि । शा २०७।३७ ४०

२ परदारेषु ये सन्ता अहृत्वा दारसग्रहम् ।

निरागा पितरस्नेयां श्राद्धकाले भवन्ति हि ॥ इत्यादि । अनु १२९।१०२

अद्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम सता । इत्यादि । आदि ७४।४१ ४८

यदा धमच भार्या च परस्परवगानुगौ ।

तदा धर्मावशमाना त्रयाणामपि सगम ॥ धन ३१२।१०२

घमपत्नी का स्थान उच्च—समाज की शुचिता एवं अमान्य नाना प्रकार की उत्तति का प्रबान हेतु विवाह प्रथा है, यह उस समय के मनीषिया ने विनोप रूप में मोचा था। घमपत्नी का उन्हाने जा गारव दिया है, वह प्राचीन समाज की सम्यता का एक उज्ज्वल चित्र है, इसमें सन्देह नहीं है। विवाह-संस्कार द्वारा गृहस्थ जीवन को मधुर बनाने का आदग बहुत जगह बहुत रपा म प्रवट हुआ है।

नारी का उज्ज्वल रूप—नारी के कया, सृष्टिमिणी व माता के रूप में जमा धारण म्नु, प्रेम व भक्ति का जा आचमनना निदशन मिलता है, वही असल में उम समय के समाज का एक उज्ज्वल पवित्र चित्र हमारा आत्मा के सामने उपस्थित करता है।

गृहस्थ का दायित्व—पति-पत्नी के प्रणय में भी अस्ति विश्व के कल्याण का दायित्व निहित था। गृहस्थाश्रम का दायित्व कितना अत्रिष्ठ था, यह आग के प्रसरण में (चतुराश्रम) विस्तृत रूप में बताया जायगा। केवल इन्द्रिया का परिपूर्णता के उद्देश्य में विवाह के कर्तव्य का स्थिरीकरण नहीं हुआ था। परिपूर्ण मानव-जीवन-यापन करना ही उसका उद्देश्य था। (इस विषय में नारी प्रवचन देखिए) भाषा और गृहस्थ्य सवर्षी अध्याया का पठन से उम समय के समाज की विचारधारा का आदग अच्छी तरह समझा जा सकता है।

पति व पत्नीवाचक कुछ शब्दों के अर्थ—पतिवाचक व पत्नीवाचक कई शब्दों के व्युत्पत्तिगत अर्थ भी उल्लिखित हैं। पति भाषा का भरण-यापन व प्रतिपालन परें एमा भर्ता व पतिशब्द में निर्णय किया गया है। पत्नी का पुत्र प्रदान करने के कारण पति का 'वर' कहा जाता है। पत्नी पुत्र्य द्वारा पीपित है, इस कारण उसे 'माया' कहा जाता है। पति (पुत्र रूप में) स्वयं भाषा के गम में प्रवेश करके पुत्ररूप में गमग्रहण करता है, इस कारण पत्नी का 'जाया' कहा गया है।

१ भार्याया भरणान् भर्ता पालनाच्च पति स्मृत ॥ आदि १०४।३०१—गा २६५।३७। अथ ९०।६२

२ पुत्रप्रदानाद्वरः । अथ ९०।५३

३ भवध्यपेन भार्या च । गा २६५।५२

४ भार्या पति सप्रविश्य स यस्माज्जायते पुत्र ।

जायायास्तद्वि जायाय पौराणा कथयो विट् ॥ आदि ७४।३७

आत्मा हि जायते तस्या तस्माज्जाया भवत्युत । यत् १२।७० । वि०२१।४१

‘पत्नी सदा आदर का पानी है, इसलिये उसे दारा बहा गया है।’ पति के व्यसनी होने से पत्नी दुखी होती है इसलिये उसे ‘वासिता’ बहा गया है।^१

‘मातवाचक कुछ शब्दों की निरुक्ति—जठर में धारण करती है, इसलिये माता का धानी’ जन्म की हेतु है, इसलिए ‘जननी’, सतान के अगा का पापण करने के कारण ‘अम्बा’ वीरपुत्र प्रसव करने के कारण बीरसू, और गिणु की सुश्रूपा करने के कारण ‘गुश्रु’ नामा में अभिहित किया गया है।^२

✓ विवाह की अवस्था का स्थिरीकरण—वर बक्या की उम्र के समय में महाभारतकाल में बहुत समय में दो एक बात कही हैं। तीस वष का वर दस वष की बयस्का एव इक्कीस वष का वर सात वष की नग्निका से पाणिग्रहण करे। आचार्य गौतम ने समावतन काल में प्रोक्त शिष्य उतक से कहा था यदि तुम आज पात्रश वर्षीय युवक होते तो मैं अपनी कन्या को तुम्हें समर्पित कर दता। इस उक्ति से पता चलता है कि पुत्र्य भोग सात की अवस्था में भी विवाह कर सकता था।^३

नग्निका विवाह एक भी नहीं—अजातरजस्का अनागतयौवना कुमारी का विवाह करना ही गार्हस्थ्य विधान था। किन्तु समाज में इस आदत का बहुत कम पालन हुआ। विवाह के सब चित्र युवक-युवना विवाह के मित्र हैं। बालिका विवाह एक भी नजर में नहीं आता।

✓ महाभारत की महिलाएँ यौवन-काल में विवाहित—महाभारत में जिन प्राचीन इतिहासों का उल्लेख हुआ है उन सबसे पता लगता है कि दमयन्ती सावित्रा गमुन्तला द्रव्यानी, गर्मिष्ठा आदि कोई भी विवाह के समय अनागतयौवना बालिका नहीं थी। एकमात्र सीता अवश्य बालिका थी, किन्तु उनका पिता ने जो भीषण प्रतिज्ञा की थी उसमें गायद दीघनाल तक अविवाहित रहना भी सम्भव था। जनएव बाल विवाह का दण्ड महाभारत में उद्धृत प्राचीन इतिहास में भी नहीं मिलता, यह कह सन है।

१ दारा इत्युच्यते लोके। इत्यादि। अनु ४७।३० (द्रष्टव्य नीलकण्ठ)।

२ व्यसनित्याच्च वासिताम्। शा २६५।५२

३ कुक्षिसधारणाद्वाग्नी जननाज्जननी स्मता। इत्यादि। शा २६५।३१, ३२

४ त्रिन्दुर्षो दग्धर्षा भार्या विदेत नग्निकाम्।

एवविगतिवर्षो वा सप्तवर्षमिवाप्नुयात् ॥ अनु ४४।१४

युवा षोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान्। इत्यादि। अश्व ५६।२२

महाभारत की पात्रात्रा में सयवता अम्बिका अम्बालिका गांधारी, कुन्ती, द्रौपदी, माद्री, सुभद्रा, चित्राङ्गा उलूपी आदि प्रमुख महिलाओं में एक अपन पूण यौवन-काल में परिणीता हुई थी। उस काल में जो युवतियाँ स्वयंवर हाती थी, उनकी ता वान ही जन्म है लेकिन पिता माता आदि प्रमुख अभिभावक भी प्रायः बाल्यकाल बीत जाने पर ही ब्या का विवाह करते थे। कुन्ती ने ता विवाह के पूव पितृगृह में हा सतान (वर्ण) प्रसव की थी ऋषि कुण्डिण का ब्या ने विवाह के विषय में पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया था इस तरह के उदाहरण भी महाभारत में मिलते हैं। एक वाक्या के शिऱ्य इतना साहम दिखाना संभव नहीं था।

✓ धर्मका ब्या माता पिता की दुःखिन्ता का कारण—यद्यपि युवती-विवाह का प्रचलन ही अधिक था, तब भी घर में अविवाहिता ब्या का ब रहने पर पास पड़ोसी ब्या के पिता को जब-जब सचेत करते रहते थे। सावित्री के पिता अश्वपति से नागदमुनि ने जिनासा की थी, ब्या ता युवती हो गई है, जइ इसका विवाह क्या नहीं कर दते ? अश्वपति ने भी घर का निश्चय करते समय सावित्री का उपदेश दते हुए कहा था, 'जो पिता यथामय ब्या का विवाह नहीं करता, वह समाज में निन्दनीय है।'

पड़ोसियों की अकारण जिनासा—ब्या की उम्र कुछ अधिक हात हा पिता कुछ चिन्तित हा जाते थे, विशेषतः पड़ोसियों की अवाञ्छित दृष्टियाँ व कारण और भा आकुल हाते थे।'

पितृगृह में ऋतुमती होने के तीन वर्ष बाद ब्या को घर निरूपण की स्वयं-प्रता—पितृगृह में ऋतुमती हात के बाद तीन साल तक ब्या प्रताप्ता कर कि पिता उपयुक्त घर दूखना है या नहीं। तीन साल बाद पिता के मत का प्रतीक्षा शिऱ्य बिना अपना पति चुन ले। महाभारत में यह विधान है।'

आठ प्रकार के विवाह—विवाह के आठ प्रकार का विधान मिलता है।

१ गत्य ५०१६ ८।

२ किमर्थं युवतीं भर्त्रे न चना मप्रयच्छति । यन २९३।४

अप्रदाता पिता वाच्य । यन २९२।३५

३ यदर्भातु तथायुवनः युवते प्रेभ्य थ पिता ।

मनसा चित्तयामास करम दद्यामिमा सुताम ॥ यन ९६।३०

४ प्राणिं धर्षापुदाभते ब्या ऋतुमती सती ।

धनुषे स्वयं सम्प्राप्त स्वयं भर्त्रेणमज्जयेत ॥ यन ४४।१६

जैसे—ब्राह्म ऋषि, आप प्राजापत्य जगुर गाधव राशम एव पैगाव । स्वयभूय (जादिमनु) न इन जाठ प्रनार वे विवाहा की व्यवस्था की थी।^१

ग्रह्या—वर की विद्या बुद्धि वश आदि के बारे में विशेष रूप से पता लगाने के लिये सदैव राज सञ्चरित्र वर का क्या का गरशक यदि क्या सम्प्रदान करे तो वह विवाह 'ब्राह्म' होता है।^२

दव—यदि वर वर ऋत्विज का यदि क्या दान की जाय, तो उस विवाह को दव कहते हैं।^३ (राजा लामपाद ने दवविधान से ऋष्यशृंग के साथ शाता का विवाह किया था।)

आप—क्या के गुण रूप में वर से दो गायें लेकर क्यादान करने का 'आप' विवाह कहते हैं।

प्राजापत्य—वर को धनसम्पत्ति से सन्तुष्ट करने के बाद यदि उसे क्या दान की जाय, तो उस विवाह का प्राजापत्य के नाम से जानना चाहिए।^४

आसुर—क्यादान का बहुत सा धन देने या क्या के परिवार का वर को पाना प्रकार से प्रत्यभिन्न करने यदि क्या ग्रहण की जाय, तो उस आसुर विवाह कहेंगे।^५

गाधव—वर व क्या के परस्पर प्रणय के फलस्वरूप जो विवाह सम्पादित हो उगना नाम गाधव विवाह है। दूसरी जगह कहा गया है कि कामा पुरुष यदि सकामा कुमारी के माय एकात्म में समय करे तो वह मिलने का गाधव विवाह है।

१ अष्टाथैव समासेन विवाहा घमत स्मता । इत्यादि । आदि ७३।८, ९।१०२। १२ १६।

२ गौल्यते समाज्ञाय विद्या योनि च क्षम च । इत्यादि । अनु ४४।३, ४

३ ऋत्विगे वितते क्षमणि दद्यात्कृत्वा स दव । अनु ४४।४ (नीलकण्ठ)

४ आयें गोमियुन गुल्म । अनु ४५।२०

गोमियुन दद्यापयच्छेन स आप । अनु ४४।४ (नीलकण्ठ) ।

५ यो दद्यात्तुबूलत । अनु ४४।४ (नीलकण्ठ) ।

६ घनेन बहुधा श्रैत्या सम्प्रलोभ्य च वाचपान । इत्यादि । अनु ४४।७

७ अभिप्रेना च या यम्य तस्म दद्या युधिष्ठिर ।

गधवमिति त धम प्राहूर्वेदप्रिदो जना ॥ अनु ४४।६

सा एव मम सकामस्य सकामा परदर्शनि ।

गधवेण विवाहा भार्या भवितुमर्हति ॥ आदि ७३।१८, २७

राक्षस—नयाकर्ता के क्याप्रदान म अमम्मत हान पर भा उद्धत परिणता यनि क्यापथ वाला पर अमानुषिक अत्याचार करके सिर पीटती और रोनी मिलसती क्या को बलपूर्वक ल जाता है ता उस विवाह का राक्षस विवाह कहन ह।

पशाच—मुप्त जयवा प्रमत्त क्या के साथ बलात्कारपूर्वक रमण करन का नाम पशाच विवाह है।^१

विवाह का धम अधम—उपयुक्त विवाहा म ब्राह्म दव व प्राजापत्य य तीन धमसम्मत ह। आप व अमुर विवाह म क्याकर्ता वर से धन ग्रहण करता है इसलिए य दाना विवाह धमसम्मत नहीं है। विनेपत अमुर विवाह अत्यत निदनाय ह। गाधव एव राक्षस विवाह जन प्रशस्त न होते हुए भा क्षत्रिया व लिय अधमकारक नहा है। पशाच विवाह सबथा परित्याज्य है।

जातिविनाय मे विवाह के प्रकारभेद—जयन कहा गया है कि ब्राह्म दव बाप एव प्राजापत्य विवाह ब्राह्मणा व लिए प्रशस्त ह। क्षत्रिया के लिए य चार एव गाधव जीर राक्षस विवाह प्रशस्त है। वश्य जीर गूद्र के लिए अमुर विवाह भी निन्दनाय नहा है। पशाच विवाह का शास्त्र ममथन नग करता। राक्षस विवाह भी किसी अय प्रशस्त विधान के माय मिश्रित हाने पर निन्दनाय नहा है।^२

मिश्रित विवाह विधि—उल्लिखित जाठ विवाह विधिया मे ग कोई एव त्रिलुल विगुद्र म्ग से हमशा समाज म पूण नहीं हाती था। कभी कभी दखा गया है कि एव हा विवाह म दा विधान मिश्रित हुए हैं। दमयता व स्वयवर म ब्राह्म एव ग धव विवाह मिश्रित थे। रनिमर्गी का विवाह राक्षस व गाधव मिश्रित था, मुभद्रा व विवाह म राक्षस व प्राजापत्य विधिया मिश्रित था।^३

गाधव व राक्षस विधि को लोग कोई बहुत अच्छा नहीं समझने थे—गाधव आर राक्षस विवाह व क्षत्रिया म काफी प्रचलिन हाते हुए भी लागी की दृष्टि म

१ हत्वा छित्वा घ नीर्वाणि रुन्ता रुन्ता गहात ।

प्रसह्य हरण तात रागतो विधिरुच्यते ॥ अनु ४४।८

२ अनु ४४।८ (नीलकण्ठ) । आदि ७३।९ (नीलकण्ठ) ।

३ पचानातु प्रयो धर्म्या द्वात्रयो यधिष्ठिर ।

पशाच चागुरश्च वन क्तयो वयञ्चन ॥ अनु ४४।९ । आदि ७३।११

४ प्रगस्ताचतुर पूर्वान ब्राह्मणस्योपधारय । इत्यादि । आदि ७३।१० १३

प्रमह्य हरणचापि क्षत्रियाना प्रगस्यत । आदि २०९।२२, १०२।१६

५ अनु ४४।१० (नीलकण्ठ) ।

वह निन्दनीय ही माना जाता था। एकमात्र पात्र व पाना का परस्पर मिलन हाते ही गाधव विवाह सम्पन्न हो जाता था। किसी के भी अभिभावक का सम्मति की आवश्यकता नहीं हानी थी। जीर राक्षस विवाह एकमात्र वर की इच्छा व दहिव बल पर आधारित था। भाजित भापा म उसे राभम विवाह कहन पर भी वह प्रया एक प्रवार ने गुडई म गण्य था। इसी कारण गायन समाज म काफी लोग उन्हें बहुत पसंद नहीं करत थ। स्वयवर प्रथा भा काफी जगा म गाधव विवाह जसी ही है। इसलिए स्वयवर वा भी सब लाग प्रगस्त पद्धति म नहीं गिनते थ।^१

समाज मे गाधव व राक्षस विधि का प्रसार—गमाज म ऊच जात्शा के वाच स्थान न मिलन पर भी गाधव विवाह का वणन हा अधिन मिलना है। भाता विचित्रवीथ के लिय भाष्म द्वारा वागिराज की कया वा हरण दुर्याधन वा चित्रा गद कया वा हरण अजुन का सुभद्राहरण एव कृष्ण का रविमणाहरण राक्षस विधान के जनगत ही आत है। दूसरा म अय विधाना व मित्रित हान हुए भी भीष्म वा हरण तो केवल गारारिक बल हा प्रनट करता है।

ब्राह्मविधान ही सर्वापेक्षा प्रशस्त—ब्राह्मविधान दूसर विधाना म थप्ट समया जाता था। कहा गया है कि जा ब्राह्मविधान से कयादान करत हैं व एम लोन म दास दामी क्षन अलकार जादि उपभाग्य वस्तुभा का प्राप्त करत हैं एव मयु व वात एद्रगन मे वास करत ह।

विवाह म गारत्रीय विधि निषेध—कौन सी कया विवाह के योग्य है कौन सा अयोग्य इस विषय म अनेक प्रकार के विधि निषेध महाभारत म वर्णित ह। वर के मवध म भा दा चाण वानें मिगती है। कया विवाह योग्य है या नहीं, इसका निणय करन के लिए गाररिक गुभागुभ लक्षणा का भी दखने वा नियम था। बाहरी तौर पर गुभलक्षणा दिखाई देने वागा कया गाम्त्रानमार त्रिवाह योग्य है कि नग एम पर भी ऋषि वचना के अनमार जच्छा तरह विचार करना पडता था। लागी की धारणा था कि गारत्रीय निषेध अमाय करन पर या ता विवाह म कोद बाधा नहीं पडगी जकिन निषेध वा उच्छेधन करन से वर व कया दुभाग्य वस्त रहग जीर एहिक व पारगैकिव श्रय प्राप्ति म नाना प्रकार के विघ्न जायेंग।

१ एतत्तु नापरे चाणुरपरे जातु साधव । अनु ४५।५

२ यो ब्रह्मदेयातु ददाति कयान । वन १८६।१५

दासी दाममलजारान क्षत्राणि च गहाणि च ।

ब्रह्मदेयां मुता दद्या प्राप्नोति मनुजपभ ॥ अनु ५७।२५